ओ३म्
कृण्वन्तोविश्वमार्यम्
सार्वदेशिक
आषाढ़ २००८ वि०
जुलाई १९५१
सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति
मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
१ प्रति ॥)

विषयानुक्रमणिका

भ्रान्ति निवारण

डा० अम्बेदकर जी के वेदादि विषयक विचारों की समीक्षा

वैदिकगवेशक श्री शिवपूजनसिंह जी सिद्धान्त शास्त्री, विशारद साहित्यलङ्कार, सञ्चालक
श्री दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, कानपुर

सम्प्रति माननीय श्री डा० भीमराव अम्बेडकर एम० ए०, पी० एच० डी० विधान-सचिव (Law Minister) हैं। आपने आंग्ल भाषा में "Who were the Shudras ?" नामक एक बृहत् ग्रन्थ लिखा है उसका आर्य भाषा में अनुवाद "अछूत कौन और कैसे ?"+ और "शूद्रों की खोज"× नाम से हुआ है। इन दोनों ग्रन्थों में डा० महोदय ने वैदिक संस्कृति पर आक्षेप किया है जिनका निराकरण अनिवार्य है।

डा०—हम 'आर्यों' से आरम्भ करें तो यह निर्विवाद है कि वे एक ही तरह के लोग नहीं थे। वे दो हिस्सों में विभक्त थे, इस बारे में मतभेद हो ही नहीं सकता। यह भी निर्विवाद है कि दोनों की दो भिन्न संस्कृतियां थीं। दोनों में से एक को हम ऋग्वेदीय आर्य कह सकते हैं, और दूसरों को अथर्ववेदीय। इन के बीच की सांस्कृतिक खाई एक दम पूरी २ प्रतीत होती है। ऋग्वेदीय आर्य यज्ञों में विश्वास करते थे। अथर्ववेदीय जादू टोने में।"………(अछूत कौन और कैसे ? पृ० ५६)

समीक्षा—डाक्टर महोदय का यह लेख कि आर्य दो हिस्सों में विभक्त थे और संस्कृति भिन्न २ थी, सर्वथा भ्रमपूर्ण है। आपने ऋग्वेदीय और अथर्ववेदीय दो प्रकार के आर्यों की कल्पना की है जो आपके ही मस्तिष्क की उपज है। आपका समर्थन कोई भी ऐतिहासिक विद्वान नहीं कर सकता है। ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद ये ईश्वरीय ज्ञान है।

अथर्ववेद में कोई जादू-टोना नहीं है। मैंने अपनी पुस्तक "अथर्ववेद की प्राचीनता"[1] में इस पर पूर्ण प्रकाश डाला है। इस की एक प्रति

+ सन् १९४९ में प्रथमबार गौतमबुक डिपो, नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित [पृष्ठ १८४ मूल्य ४)]

× सन १९५० में प्रथमबार, अमृत बुक कम्पनी, कनाट सरकस, नई देहली से प्रकाशित [पृष्ठ ११३, मूल्य ३)]

1. श्री दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर से प्राप्त, मूल्य ।=)

ने आपके पास श्रद्धेय पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार, 'विद्यावाचस्पति' सम्पादक "सार्वदेशिक" दिल्ली के द्वारा भिजवा दी थी।

डा०—"ऋग्वेद में हमारा परिचय आर्य देवता इन्द्र के शत्रु अहि-वृत्र (सांप-देवता) से होता है। पीछे चल कर यह सांप-देवता नाग नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ।........." (पृष्ठ ५७)

समीक्षा—आपने 'अहि-वृत्र' को सांप समझा है इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक शब्दों से अनभिज्ञ है। लौकिक संस्कृत में 'अहि' का अर्थ सर्प होता है, पर वैदिक संस्कृत में यही अर्थ नहीं। वैदिक और लौकिक संस्कृत में आकाश-पाताल का अन्तर है।

'वृत्र' का अर्थ मेघ है।

'वृत्र इति मेघस्य नाम' (निघण्टु अ० १, खं० १०)

'तत्को वृत्रो ? मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रो (सुर इत्यैति हासिकाः........."

(निरुक्त अ० २, खं० १६, १७)

अर्थात्—नैरुक्तों के मत में 'वृत्र' का अर्थ है मेघ। **पौराणिक पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य**, प्राध्यापक संस्कृत और पालि विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी अपने ग्रन्थ[3] में लिखते हैं:—"ऋग्वेद के अनेक मण्डलों में इन्द्र की स्तुति में वृत्र के साथ उनके भयङ्कर संग्राम का उल्लेख किया गया है। ये वृत्र कौन हैं ? जिन के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ। शासक ने निरुक्त (२।१६) वृत्र के विषय में अनेक प्राचीन मतों का निर्देश किया है। इनमें नैरुक्तों का ही मत मान्य माना जाता है। इस व्याख्या के द्वारा हम ऋग्वेद के इन्द्र-वृत्र-युद्ध के भौतिक आधार को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। आकाश को चारों ओर से घेरने वाला मेघ ही वृत्र है और उस को अपने वज्र से मार कर संसार के जीव जन्तुओं को दृष्टि से तृप्त कर देने वाले 'सप्तरश्मि वृषभः इन्द्र वर्षा के देवता हैं और प्रति वर्षा ऋतु में गगन मण्डल में होने वाला यह भौतिक संग्राम ही इन्द्र वृत्र युद्ध का परिदृश्यमान भौतिक दृश्य है। इसी का वर्णन 'रूपक' के द्वारा ऋग्वेद में किया गया है।"

वृत्र का शत्रु सूर्य है। सूर्य का नाम त्वष्टा है।

'इन्द्र' का नाम भी 'सूर्य' है यथा—

"इन्द्र प्रत्यक्ष माचक्षते य एव (सूर्यः) तपति (शतपथ ब्रा० ४।६।७।११।

"अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः" (शतपथ ब्रा० ८।५।३।२)

"इन्द्रः सूर्य इति आचार्य दयानन्द= (यजु० १।१३ भाष्ये तथा ऋ० १।३२।५, ७ भाष्ये)

---

२. श्री वी० एस० घाटे (V. S. Ghate की "Lecture on Rigveda" पुस्तक की भूमिका देखो तथा साप्ताहिक पत्र "दिवाकर" आगरा का वेदाङ्क" भाग १ दिनाङ्क २६-१०-१६३५ ई०, अंक २८-२६ पृष्ठ ६२-६३ में प्रकाशित पं० चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति' आचार्य गुरुकुल सोनगढ़ का "वेदार्थ में कठिनता" शीर्षक लेख।

३. "आचार्य सायण और माधव" पृष्ठ १२६-१२७ [संवत् २००३ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

"इन्द्रः सूर्य इति सायणः" (ताण्डय ब्रा० १४।२।५ भाष्य)

श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव एम० ए० अपने "हिन्दुओं के आस्तिकवाद का तुलनात्मक निरूपण" शीर्षक लेख[४] में लिखते हैं:—

"इन्द्र-इस देवता को बहुत से मेघ का देवता समझते हैं। परन्तु मेघ का देवता दूसरा है, यद्यपि इन्द्र को भी पानी बरसाने वाला माना गया है" इसलिए इन्द्र वह आदित्य ज्ञात होता है, जो अपनी उष्णता से मेघों को खींच लेता है।"

आपने इस वैदिक सूर्य और बादल की शत्रुता को न समझ कर वृत्र को साँप समझ लिया है।

डा०—"गौ का यह उपयोग आर्यों को उसे भोजन के लिए मारने से नहीं रोकता था। वास्तव में गौ पवित्र मानी जाने के कारण भी उसकी हत्या होती थी। श्री काने का कहना है— "ऐसा नहीं था कि वैदिक समय में गौ पवित्र नहीं थी। उसकी पवित्रता के ही कारण वाजसनेयी संहिता में यह व्यवस्था दी गई है कि गोमांस खाना चाहिये[*]।" (पृष्ठ १०१)

समीक्षा—श्री काने ने वाजसनेयी-संहिता से तो कोई प्रमाण नहीं दिया कि किस स्थल में गो मांस खाने की व्यवस्था दी गई है और न तो डाक्टर महोदय ने यजुर्वेद पढ़ने का कष्ट उठाया।

आप पुनः यजुर्वेद का स्वाध्याय कीजिए आप को स्पष्ट गोवध निषेध का प्रमाण मिलेगा। देखिये—

गां मा हिंसी रदितिं विराजम्" (यजु० १३ मन्त्र ४३)

अर्थात्—गौ जो कि अदिति (न काटने योग्य) है, और जो विराट् अर्थात् अन्न के देने वाली है—उसकी हिंसा न कर।"

अन्नं वै विराट, अन्नमु गौः" (शतपथ ब्राह्मण ७।४।५।२।१९)

"इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये।

घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसी परमे व्योमन्।" (यजु० अ० १३ मं० ४७।

अर्थात् 'सैंकड़ों तथा सहस्रों का धारण और पोषण करने वाली दूध का कूप, जनों के लिए घृत देने वाली, और न काटने योग्य जो गौ है, उसकी हिंसा इन लोकों में न कर।"

इन मन्त्र में गौ के न काटने में निम्नलिखित हेतु दिए हैं—

(अ) एक गौ सैंकड़ों तथा सहस्रों मनुष्यों का पालन पोषण करती है।

(इ) गौ दूध का कूप है। (उ) मनुष्यों के लिए यह घी देती है, अतः यह परम उपकारी है। (ऋ) इसका नाम अदिति है। अदिति का अर्थ है न काटने योग्य।

यही मन्त्र "शतपथ ब्राह्मण, कां, ७, प्र० ४, अ ५, ब्रा० २ की ३४वीं कण्डिका में आया है जिस की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में गई है—

"अथ गौः। इमं साहस्रं शतधारमुत्समिति। साहस्रो वाएष शतधार उत्सो यद्गौः। व्यच्यमानं सरिरस्य मध्य इति। इमे वै लोकाः सरिरमुपजी

---

४. मासिक पत्रिका "माधुरी" लखनऊ, वर्ष ११, खण्ड २, संवत् १९९० वि, संख्या ३, पृष्ठ २०५

* धर्म शास्त्र विचार (मराठी)

नमेषु लोके रिवत्येतद्। घृतं दुहाना मदितिं ेति। घृतं वा एषादितिं जनाय दुहे। अग्ने हिंसीः परमे व्योमन्निति। इमे वै लोकाः परमे ोम, एषु लोकेष्वेनं मा हिंसीरिति।"

अर्थात्—"अब गौ का वर्णन करते हैं। गौ निश्चय से सैंकड़ों तथा सहस्रों का धारण करने वाला दुग्ध-कूप है। गौ इन लोकों में जीवन का आधार है।

यह मनुष्य को घृत देती है। इसका नाम अदिति है। अतः इन लोकों में इसकी हिंसा न कर।"

"अन्तकाय गोघातम्" (यजु० अ० ३०, मन्त्र १८)

अर्थात्—गोघाती को प्राणदण्ड हो।

डा०—ऋग्वेद कालीन आर्य भोजन के लिए गोहत्या करते थे और गोमांस खाते थे, यह ऋग्वेद से ही एकदम स्पष्ट है। ऋग्वेद में इन्द्र का कथन है—वे एक के लिये १५-२० बैल पकाते हैं। ऋग्वेद का ही कथन है कि अग्नि देवता के लिए घोड़ों, वृषभों, बैलों, बांझ गौओं तथा मेढ़ों की बलि दी जाती थी। ऋग्वेद से यह भी स्पष्ट होता है कि गौ को एक खड्ग अथवा कुल्हाड़ी से मारा जाता था।" (पृ० १०१)

समीक्षा—डा० महोदय के सदृश ही पाश्चात्य और कुछ प्राच्य विद्वान् आर्यों पर गोमांस भक्षण का दोषारोपण करते हैं यथा-मैकडानलड कीथ[1], ग्रीफिथ[2], प्रो० मैक्समूलर[3], विल्सन[4], ह्विटनी[5] तथा प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान, श्री सायणाचार्य, उव्वट, महीधर, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, सर रमेशचन्द्र दत्त इत्यादि।

किन्तु बहुत से प्राच्य विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया है कि आर्य गोमांस भक्षण करते थे। यथा—महर्षि दयानन्द जी सरस्वती[6], पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, आचार्य श्री विश्वश्रवाः[8] जी, पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक,[9] आचार्य रामदेव जी।[10]

श्री श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट[11], पं० धर्मदेव जी 'सिद्धान्तालङ्कार' विद्यावाचस्पति[12],

---

१. "Vedic Index" Vol. II, PP 145.

२. ऋग्वेद का अनुवाद आंग्ल भाषा में।

३. "The sacred books of the East" Vol. VII (in 1880 printed at the Clarendar Press, Oxford).

४. ऋ० १।१६४।४३ तथा अथर्व० ६।१०।२५ पर इनका अंग्रेजी अनुवाद

५. उपर्युक्त मत पर इनका अंग्रेजी अनुवाद

६. "गोकरुणानिधि", "सत्यार्थ प्रकाश" त्रयोदश समुल्लास

७. चारों वेदों पर हिन्दी भाष्य देखो तथा मासिक पत्र "सार्वदेशिक" देहली नवम्बर १६४३ ई० पृष्ठ ४२६-४३० "म० अमरसिंह जी की मांसाहार के पक्ष में अन्तिम चाल, स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों पर जाल" शीर्षक लेख।

८. साप्ताहिक "आर्य मित्र" आगरा गुरुवार दिनाङ्क ५ जुलाई १६३४ ई०, पृ ४-५ में "क्या वेदों में बर्बर और अश्लील प्रथाओं का वर्णन है?" शीर्षक लेख।

६. वही, "भट्ट जी के आक्षेपों का उत्तर" शीर्षक लेख।

१०. "भारत वर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्ष पर्व), तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १६७ से १८० तक [सन् १६२४ ई० में गुरुकुल विश्वविद्यालय, काङ्गड़ी द्वारा प्रकाशित]

११. "वेद और गोमेध" पुस्तिका [सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली से प्राप्त]

१२. "वैदिक यज्ञ संस्था" प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १३४ से १४२ तक "वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा" शीर्षक लेख।

पं० जे० पी० चौधरी 'काव्यतीर्थ'[13], वैद्यराज पं० खुन्नी लाल शास्त्री[14], पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०[15], डा० बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लिट्, डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट्, डा० सत्यप्रकाश डी० एस० सी०[16], शास्त्रार्थ-महारथी पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार[17], पं० नरदेव शास्त्री, 'वेदतीर्थ'[18], पं० यशपाल जी 'सिद्धान्तालङ्कार'[19], श्री रमेशचन्द्र जी शास्त्री[20], श्री स्वामी भूमानन्द जी एम० ए०[21], महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी[22], साहित्य भूषण पं० रघुनन्दन शर्मा[23], पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर गीतालङ्कार, वेदाचार्य सम्पादक "वैदिक धर्म"[24], पं० विश्वनाथ जी 'विद्यालङ्कार' भू० पू० वेदोपाध्याय तथा उपाचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय, काङ्गड़ी[25]

---

१३. "वेद और पशुयज्ञ" पुस्तक (चौधरी एण्ड सन्स, नीची बाग, काशी से प्रकाशित]

१४. मासिक "विज्ञापक" बड़ौदा, वर्ष ७, अगस्त+सितम्बर १९३० ई०, सं० २ में "आयुर्वेद और मांसभक्षण" शीर्षक लेख ।

१५. "वैदिक संस्कृति" पृ० ११० से ११५ तक [सन् १९५० ई० आर्य साहित्य सदन, शाहदरा देहली द्वारा प्रकाशित]"हम क्या खावें घास या मांस ? पृष्ठ १६६-१६७

१६. "Humanitarian Diet PP. 179 to 187 [In 1941, published by Arya Samaj, Chowk, Allahabad.

१७. "पशु बलि वेद शास्त्र विरुद्ध है" पुस्तिका, [संवत २००६ में आर्यसमाज, जयपुर द्वारा प्रकाशित]

१८. "यज्ञ में पशुवध वेद विरुद्ध" पुस्तिका, द्वितीय संस्करण ।

१९. "शक्ति-रहस्य" पृष्ठ ११२ से १३५ तक [दिसम्बर १९४८ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, जालन्धर नगर से प्रकाशित द्वितीय संस्करण]

२०. साप्ताहिक "दिवाकर" आगरा का "वेदाङ्क" भाग १ दिनाङ्क २६-१०-१९३५ ई०, अङ्क २८, २९ पृष्ठ १३८ से १४० तक "वैदिक विधि हिंसा रहित है" शीर्षक लेख ।

२१. "Ecclesia Divina" PP. 171 to 214 [In 1936 published by The Arya Samaj, New Delhi]

२२. "वैदिक काल का इतिहास" पृष्ठ ४७ से ५६ तक [सन १९२५ ई० में हित चिन्तक यन्त्रालय, रामघाट, काशी में मुद्रित, अप्राप्य]

२३. "वैदिक सम्पत्ति" पृष्ठ ५८५ से ६०७ तक [संवत् १९९६ वि० में शेठ शूरजी वल्लभदास कच्छ केसल, सेन्डहर्स्ट ब्रिज बम्बई, ४ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

२४. "वैदिक यज्ञ संस्था" भाग ३, गोमेध [पूर्वार्ध], द्वितीय संस्करण [अप्राप्य]

२५. "वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा" [सितम्बर १९२५ ई० में सोम पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर द्वारा प्रकाशित]

तथा मैंने अपने "आर्यों पर गोमांस भक्षण का दोषारोपण" शीर्षक लेख[२६] में तथा ट्रैक्टों[२७] में तथा वेदाचार्य पं० शिवशंकर शर्मा 'काव्य तीर्थ'[२८]। अब डा० महोदय लिखते हैं-ऋग वेद में इन्द्र का कथन है -वे एक के लिये १५-२० बैल पकाते हैं।'

यहां आपने यह प्रमाण नहीं दिया कि ऋग्वेद के किस स्थल पर ऐसा लिखा है। फिर भी मैंने जब ऋग्वेद का अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि 'ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ८६, मन्त्र १४ में "उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्"......."मंत्र आया है जिसे देखकर वेदानभिज्ञ भ्रम में पड़ जाते हैं कि यहां बैल पकाने का वर्णन है। 'उक्ष' लौकिक संस्कृत में भले ही 'बैल' अर्थ में हो, पर वैदिक संस्कृत में यह 'बैल' के अर्थ में नहीं आता है। 'उक्ष' एक औषधि का नाम है जो कि विशेष बलबर्द्धक होता है। 'उक्ष' को वाचस्पत्य बृहभिदान' में 'ऋषभौषधि' लिखा है जिस का प्रमाण यह है 'उक्षा' भद्रो, बलीवर्द, ऋषभो, वृषः अनड्वान्, सौरभे योगौः।" "शृङ्गीतु ऋषभो वृषः" (अमर) अर्थात् "उक्ष" शृङ्गी वा काकड़ सिंगी नाम औषधि का नाम है।"[२९]

'उक्षा' सोम औषधि का भी नाम है (ऋ० १०।२८।११ पर सायण भाष्य देखो)

"इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसो ऽन्तर्नदी
ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधचन्त उक्षणः"
(ऋ० १।१३५।९)

यहां 'उक्षा' शब्द बैल वाचक नहीं है। देखिए पाश्चात्य विद्वान् ग्रिफिथ (Grifith) भी यहां "The Bulls=Blasts of wind" अर्थात्-वायु के वेगों का वाचक है, ऐसा कहते हैं।

"उक्षा ह्यत्र परिधान मक्तोरनुस्वं धाम जरितुर्ववक्ष" (ऋ० ३।७।६)

यहां 'उक्षा' का अर्थ सूर्य अथवा अज्ञानान्धकार का नाशक परमात्मा है। ग्रिफिथ (Grifith) भी कहते हैं - "उक्षा- Bull, the strong God who protects his worshipper" अर्थात्- यहां का बैलवाचक 'उक्षा' शब्द उपासक की रक्षा करने वाला सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का वाचक है।

---

२६. मासिक पत्र "वैदिक धर्म" वर्ष २६, अगस्त १९४५ ई०, अङ्क ८, पृष्ठ २२५ से २३३ तक में प्रकाशित

२७ "भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि" [पं० जयचन्द्र विद्यालङ्कार कृत "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" जि० १ की आलोचना, जयदेव ब्रादर्स, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित], "भारतीय इतिहास और वेद" [डा० राजबली पाण्डेय एम० ए० कृत 'भारतीय इतिहास की भूमिका" की आलोचना, जयदेव ब्रादर्स, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित],

२८. "बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यम्" पृष्ठ ७७६ [संवत् १९६८ वि० में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित और प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

२९. आचार्य रामदेव जी कृत "भारतवर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्ष पर्व) तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १७७

जो नाम परमेश्वर वाचक हैं वे जीवात्मा के भी वाचक हैं। इससे 'उक्षा' शब्द के जीवात्मा, परमात्मा दोनों अर्थ होते हैं।

परमात्मा परिपूर्ण है और उसकी उपासना करने द्वारा जीवात्मा पूर्ण होने की तैयारी में है। इसलिये इस जीवात्मा की पूर्णता करने के उपाय विविध अलङ्कारों से वेद में बताए हैं। उसमें "देहरूपी हंडी में इस जीवात्मा को पका कर परिपक्व बनाने की" भी एक आलंकारिक उपमा है।

अतएव इस मंत्र का अर्थ हुआ—"(मे) मेरे (पंचदश उक्षणः) १५ बलयुक्त, शरीर के धारक प्राणों को अथवा (उक्षणः में पंचदश) शरीर को धारण करने वाले मुझ आत्मा के (पंचदश) पन्द्रहों प्राणों को और विंशतिम् हाथ और पैर की २० अंगुलियों के समान शरीर के भीतर के २० अंगों को, वा (विंशतिम्) देह में प्रवेशशील आत्मा को विद्वान लोग (साकं-पचन्ति) एक साथ परिपाक, ज्ञान, और अभ्यास से दृढ़ करते हैं वा विस्तार से वर्णन करते हैं।"...[३०]

आप लिखते हैं कि गौ, अश्व की बलि का विधान वेदों में है, पर यह भी आपका भ्रम है।—देखिये

"नकि देवा इनीमसि नक्या योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि"

(सामवेद, छन्द आर्चिक,
अध्याय २, खण्ड ७, मंत्र २)

(ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १३४, मन्त्र ७ +)

इस मन्त्र का अर्थ श्री सायणाचार्य जी करते हैं:—"हे (देवाः) इन्द्रादयः! युष्मद्विषये (न कि इनीमसि) न किमपि हिंस्मः, (नकि) न च (योपयामसि) योपयामः, अननुष्ठानेन, अन्यथानुष्ठानेन वा मोहयामः। किंतर्हि? (मन्त्रश्रुत्यम्) मन्त्रेणस्नार्थ, श्रुतौ विधिवाक्य प्रतिपाद्यं यद् युष्मद्विषयं कर्म, तत् (चरामसि) आचरामः अनुतिष्ठामः।

अर्थात्—"हे इन्द्रादि देवताओ! आपके लिये हम किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते, और सत्कर्मों के न करने या अन्यथा करने से कर्म-विघात भी नहीं नहीं करते। किन्तु आपके उद्देश से जो कर्म करने वेद में विहित हैं, उन्हीं कर्मों का हम अनुष्ठान करते हैं।"

आचार्य पं० सत्यव्रत सामश्रमी, बङ्गाल के प्रसिद्ध वेदवेत्ता थे। आपने इस उपर्युक्त मंत्र के भिन्न २ शब्दों पर, विवरणकार की सम्मत्ति के रूप में, जो २ टिप्पणियां[३१] लिखी हैं, वे

---

३०. देखो-श्री पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसातीर्थ कृत "ऋग्वेद-संहिता" भाषाभाष्य, सप्तम खण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २७४-२७५

+. "पज्रेभिर पिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे" इति अधिकः पाठः ऋ० (लेखक)

३१. ये टिप्पणियां, एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल द्वारा प्रकाशित, सामवेद सायणभाष्य के सम्पादन क्रम में, उपरिलिखित मन्त्र पर लिखी हैं।

बहुत उपयोगी और मार्मिक हैं। अतः वे नीचे लिखी जाती हैं। यथा—

१–पहिली टिप्पणी मन्त्र के "इनीमसि" पद पर है, जो कि निम्नलिखित हैं—

"हे देवा ! न इनोमसि, प्राणिवधं कर्म पश्वादियागं न कुर्म इत्यर्थः"
इति विवरणकार मतम् ॥

अर्थ–हे देवो ! हम "प्राणिवध रूपी कर्म" अर्थात् पशु-भाग आदि नहीं करते। यह विवरणकार का मत है।

२–दूसरी टिप्पणी मन्त्र के "योपयामसि पद पर है, जो कि निम्नलिखित है—

"इह निखननार्थे द्रष्टव्यः यूपनिखननमपि न कुर्मः, वृक्षौषध्यादि हिंसामपि न कुर्मः" ॥
इति विवरणकार मतम् ॥

अर्थ—मन्त्र में "योपयामसि" शब्द की "युप् धातु" इस स्थान में, गाढ़ने रूपी अर्थ है। इसलिये अर्थ यह हुआ कि हम 'युप* को भी नहीं गाढ़ते"। अर्थात् वृक्ष और ओषधि आदि की भी हम हिंसा नहीं करते। यह विवरणकार का मत है।

३—तीसरी और चौथी टिप्पणियां मन्त्र के 'मन्त्रश्रुत्यम् तथा चरामसि' पदों पर दी हैं, जो कि निम्नलिखित हैं। यथा—

'जपाख्यमिति। प्राणिवधं न कुर्मः, जपमेव कुर्म इत्यर्थः" ॥ इति विवरणकार मतम् ॥

अर्थ—मन्त्रों में जिनका विधिरूप में प्रतिपादन है, ऐसे जप आदि कर्मों को ही हम करते हैं, और प्राणिवध आदि अविहित कर्मों को नहीं करते।

इस एक ही वेद मन्त्र से डा० महोदय का सिद्धान्त चकनाचूर हो जाता है कि यज्ञ में पशु-बध होता था।

"तदस्य रूपममृतं शचीभिस्ति स्रो दधुर्देवताः संरराणा।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः ॥"

महर्षि दयानन्द भाष्य—"(संरराणाः) विद्या आदि का सम्यकतया दान करने वाले (तिस्रः देवताः) अध्यापक–उपदेशक - परीक्षक, ये तीन प्रकार के विद्वान् लोग, (शष्पैः लोमानि दधुः) और जो दीर्घ जटाओं के सहित दाढ़ी-मूँछ के लोमों को धारण किये हुए हैं, ऐसे तपस्वी ब्रह्मचारी (शचीभिः) ज्ञान-कर्मपूर्वक (अस्य) इस यज्ञ के (बहुधा) बहुत प्रकार के (तत् अमृतं रूपं) उस सच्चे अमृत रूपी स्वरूप को जानते हैं, (तोक्मभिःन) बाल बुद्धि अविद्वानों से उसका स्वरूप ज्ञेय व अनुष्ठेय नहीं। (अस्य) इसके मध्य में अर्थात् इस यज्ञ में (त्वक्) चमड़ा (मांसं) मांस, (लाजा) और भुजा हुआ घृतरहित सूखा अन्न (न अभवत्) हव्य नहीं होता।"

यहां स्पष्ट तौर पर यज्ञ में मांस न डालने का विधान है।

'राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥"
(अथर्ववेद का० ११, सू० ७, मं० ७)

अर्थ—राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अर्कमेध, अश्वमेध आदि सब अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञ है, जो कि प्राणिमात्र की वृद्धि करने वाला और सुख-शान्ति देने वाला है।

* इस यूप के साथ यज्ञीय पशु को बांधा जाता है।

सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक साहित्य में यज्ञ का एक प्रसिद्ध पर्यायवाची शब्द 'अध्वर' पाया जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'अध्वर' की 'ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः' यह निरुक्ति बताई है जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि हिंसारहित कर्म ही का नाम अध्वर अथवा यज्ञ है।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते
सरस्वती महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि"
(यजु० अ० ८ मं० ४३)

अर्थ—"इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुति ये नाम, हे (अघ्न्ये) अवध्यगौ! तेरे हैं।"

गौ, स्त्री और पृथ्वी तीनों को समान रूप से यह मन्त्र बतलाता है।[६३] इडा, रन्ता आदि नामों का अर्थ देखिए—

इडा=उत्साह वर्धक पेय देने वाली
रन्ता=आनन्द बढ़ाने वाली
हव्या=पूजा करने योग्य, सत्कार करने योग्य
काम्या=प्रेम करने योग्य
चन्द्रा=सुन्दर तेजस्वी
ज्योति=प्रकाशमान
अदिति=अखण्डनीय
सरस्वती=इस से युक्त
मही=विशेष महत्त्व वाली
विश्रुति=विशेष कीर्त्तियुक्त
अघ्न्या=अवध्य, अहन्तव्या (Not to be killed)

ये ग्यारह नाम जो वेद में गौ का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं इन्हें पाश्चात्य पण्डितों ने भी स्वीकार किया है। जिस गौ का इतना महत्त्व वेद में हो उस का वध कैसे हो सकता है?

"शृंगाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः॥"
(अथर्व० ९।४।१७)

अर्थ—'जो गौवों का पति (अघ्न्यः) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानों से कल्याण की बातें सुनता है, वह आंखों से अकाल के दुर्भिक्ष का नाश करता है और अपने सींगों से राक्षसों को दूर भगाता है।'

यह बैल को अवध्य कहा है।

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्या नाममृतस्य नाभिः।
प्रनु वोचं चिकितेषु जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥"
(ऋ० ८।१०१।१५)

अर्थ—गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत का केन्द्र है। जो समझ सकता है उस मनुष्य से कहता हूं कि (अनागां) निष्पाप (अदितिं) अवध्य गौ है इस लिए इस (गांमावधिष्ट) गौ का वध मत कर। पाश्चात्य विद्वान् ग्रीफिथ भी अर्थ करते हैं—"To folk who understand, will I proclaim it, injure not adite the cow, the sinless" समझने की जिन मनुष्योंकी बुद्धि है उन सब मनुष्यों को वेद ने यह आदेश सुनाया है कि गौ सदा के

६३. पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसा तीर्थ कृत "यजुर्वेद संहिता भाषाभाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३११

सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक साहित्य में यज्ञ का एक प्रसिद्ध पर्यायवाची शब्द 'अध्वर' पाया जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'अध्वर' की 'ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः' यह निरुक्ति बताई है जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि हिंसारहित कर्म ही का नाम अध्वर अथवा यज्ञ है।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि"

(यजु० अ० ८ मं० ४३)

अर्थ—"इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुति ये नाम, हे (अघ्न्ये) अवध्यगौ! तेरे हैं।"

गौ, स्त्री और पृथ्व तीनों को समान रूप से यह मन्त्र बतलाता है।[६३] इडा, रन्ता आदि नामों का अर्थ देखिए—

इडा=उत्साह वर्धक पेय देने वाली
रन्ता=आनन्द बढ़ाने वाली
हव्या=पूजा करने योग्य, सत्कार करने योग्य
काम्या=प्रेम करने योग्य
चन्द्रा=सुन्दर तेजस्वी
ज्योति=प्रकाशमान
अदिति=अखण्डनीय
सरस्वती=इस से युक्त
मही=विशेष महत्त्व वाली
विश्रुति=विशेष कीर्त्तियुक्त
अघ्न्या=अवध्य, अहन्तव्या (Not to be killed)

ये ग्यारह नाम जो वेद में गौ का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं इन्हें पाश्चात्य पण्डितों ने भी स्वीकार किया है। जिस गौ का इतना महत्त्व वेद में हो उस का वध कैसे हो सकता है?

"अ्ङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः॥"

(अथर्व० ६।४।१७)

अर्थ—'जो गौवों का पति (अघ्न्यः) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानों से कल्याण की बातें सुनता है, वह आंखों से अकाल के दुर्भिक्ष का नाश करता है और अपने सींगों से राक्षसों को दूर भगाता है।'

यह बैल को अवध्य कहा है।

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्या नाममृतस्य नाभिः।
प्रनु वोचं चिकितेषु जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥"

(ऋ० ८।१०१।१५)

अर्थ—गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत का केन्द्र है। जो समझ सकता है उस मनुष्य से कहता हूं कि (अनागां) निष्पाप (अदितिं) अवध्य गौ है इस लिए इस (गांमावधिष्ट) गौ का वध मत कर। पाश्चात्य विद्वान् ग्रीफिथ भी अर्थ करते हैं—"To folk who understand, will I proclaim it, injure not adite the cow, the sinless" समझने की जिन मनुष्योंकी बुद्धि है उन सब मनुष्यों को वेद ने यह आदेश सुनाया है कि गौ सदा के

६३. पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसा तीर्थ कृत "यजुर्वेद संहिता भाषाभाष्य" 'प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३११

ए निष्पाप और अवध्य है, अतः उस का वध कोई न करे।"

मैं सम्पूर्ण जगत् को आह्वान (challenge) करता हूँ कि कोई भी वेद से गौ मांस भक्षण क्या, मांस भक्षण ही सिद्ध कर दे।

डा०—"········बिना मांस के मधुपर्क हो ही नहीं सकता।···इस प्रकार मधुपर्क में मांस, विशेष रूप से गो मांस एक आवश्यक अंश है। (पृष्ठ १०३)

समीक्षा—अथर्ववेद संहिता में ही केवल 'मधुपर्क' शब्द आता है। यथा—

"यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः"
(अथर्व० १०।३।२१)

अर्थ—"(यथा) जिस प्रकार का (सोमपीथे) सोमपान करने में (यशः) यश, मान, प्रतिष्ठा है और (यथा) जिस प्रकार का (मधुपर्के) मधुपर्क प्राप्त करने में (यशः) यश है।···

यहां 'मधुपर्क' क्या वस्तु है, इससे स्पष्ट नहीं होता है। आपने गृह्य सूत्रों के आधार यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि बिना मांस का मधुपर्क नहीं होता, पर गृह्यसूत्रों के वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध वचन माननीय नहीं है।

महर्षि दयानन्द जी अपने "संस्कार विधि" विवाह प्रकरण की पाद टिप्पणी में लिखते हैं—

"मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उसका परिमाण १२ (बारह) तोले दही में ४ (चार) तोले शहद अथवा घी ४ (चार) तोले मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।"[३३]

पं० श्री पाद दामोदर सातव ले कर वेदाचार्य 'गीतालङ्कार' सम्पादक "वैदिक धर्म" लिखते हैं—"मधुपर्क के विषय में देखिए पूजा के बीच में गौ लाई जाती है, वहां का वहां उससे दूध निकाला जाता है। गर्म २ अतिथि के सन्मुख प्रेम से रक्खा जाता है, साथ, २ दही घी, मधु, मिश्री ये चार पदार्थ भी दिये जाते हैं—मधुपर्क के लिये इन पांच पदार्थों की अवश्यकता है, दूध, दही, घी, मधु (शहद), मिश्री इन पांच पदार्थों का मिल कर नाम मधुपर्क है। दही-घी-मधु-मिश्री ये चार पदार्थ गृहस्थी के घर में सदा रहते ही हैं, (आज कल के बीसवीं सदी के यूरोपीय सभ्यता से रंगे हुए, घर में चाय रखनेवाले पाठक क्षमा करें, उन के घरों में ये ही चीजें दुष्प्राप्य होंगी यह हमें पता है। वैदिक काल में उक्त पदार्थ गृहस्थी के घर में सदा रहते थे। अतिथि आते ही ताजा दूध दोह कर साथ उसके उक्त पदार्थ एक कटोरी में—सुवर्ण की कटोरी में—मिला कर रखे जाते थे। अतिथि सुवर्ण चमस से या अपनी अंगुलियों से उक्त मधुपर्क खाता था और उस पर ताजा दूध पीता था। आजकल इस वैदिक मधुपर्क के स्थान पर चाय आ बैठी है वह भारतीयों को दूध पीने की आज्ञा देती नहीं है।"[३४]

(शेष अगले अंक में)

---

३३. "दयानन्द ग्रन्थमाला, शताब्दी संस्करण, प्रथमावृत्ति पृष्ठ १२३

३४. "वैदिक यज्ञ संस्था" भाग ३, गोमेध (पूर्वार्ध) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २२-२३.

ओ३म्

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्

सार्वदेशिक

श्रावण २००८ वि०
अगस्त १९५१

सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ॥)

विषयानुक्रमणिका

भ्रान्ति निवारण

माननीय डा० अम्बेदकर जी के वेदादि विषयक विचारों की आलोचना

[लेखक—श्री शिवपूजनसिंह जी सिद्धान्त शास्त्री अनुसन्धान विद्वान् कानपुर]

(गतांक से आगे)

पुनः—"नामांसो मधुपर्को भवति । ऐसे सूत्र ग्रन्थों के वचन भी वेद विरुद्ध होने से अमान्य, प्रक्षिप्त और तत्कालीन आचार पद्धति के द्योतक हैं। जिस समय ये वाक्य लिखे गए और ये नाटक रचे गए उस समय मांस का प्रचार होने से, या उस से कुछ पूर्व काल में मांस का प्रयोग होने से, इन ग्रन्थों में ऐसे वचन आते हैं। इन वचनों से अधिक से अधिक यह सिद्ध हो सकता है कि इन ग्रन्थों के समय या इन के कुछ पूर्व काल में इस प्रकार की प्रथा थी, परन्तु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि अति २ प्राचीन वैदिक काल में भी मांसमय मधुपर्क की प्रथा थी अथवा गोमांस भक्षण भी प्रचलित था।"[३५]

डा०—"अतिथि के लिए गो हत्या की बात इतनी सामान्य हो गई थी कि 'अतिथि का नाम ही 'गोघ्न' पड़ गया था अर्थात् गौ की हत्या करने वाला।" (पृष्ठ १०३)

समीक्षा—'गोघ्न' का अर्थ गौ की हत्या करने वाला नहीं है। देखिए--

"गोघ्न" शब्द "गौ" और "हन" के योग से बना है। 'गौ' के अनेक अर्थ हैं यथा वाणी पृथिवी, जल, स्वर्ग वा विशेष सुख, माता, इन्द्रिय, नेत्र, सूर्य, चन्द्र,। "हन्" का अर्थ महर्षि पाणिनि धातु पाठ में "हिंसा" और "गति" बतलाते हैं। और "गति" के अर्थ हैं ज्ञान, गमन और प्राप्ति, अतः गोघ्न के निम्न लिखित अर्थ हो सकते हैं—

(१) जिस के लिए जल की प्राप्ति की गई हो अर्थात् जिस के लिए जल का प्रबन्ध किया गया हो।

(२) जिस के लिए सुख की सामग्री प्राप्त की गई हो।

(३) जिस का वाणी से सत्कार किया गया हो।

(४) जिस की ओर आंखें लगी हों।

इन अर्थों को साधारण बुद्धि भी स्वीकार कर सकती है। क्योंकि प्रायः सभी सभ्य देशों में जब कभी किसी के घर अतिथि आता है तो उस के स्वागत के लिये गृहपति घर से बाहर आते हुए कुछ चलता है (गति), उसके प्रिय

३५, वही, पृ० २४-२५

वचन (वाणी) बोलता है। फिर जल वा दुग्धादि से उसका सत्कार करता है और यथा सम्भव उस के सुख के लिए अन्यान्य सामग्रियों को भी प्रस्तुत करता है, यह जानने के लिये कि प्रिय अतिथि इन सत्कारों से प्रसन्न होता है वा नहीं, गृहपति की आंखें भी उसी की ओर लगी रहती है।"....[३६]

"गोघ्न' का अर्थ हुआ--"गौः हन्यते प्राप्यते दीयते यस्मै स गोघ्नः" =जिस के लिये गौ दान की जाती है वह अतिथि 'गोघ्न' कहलाता है।[३७]

डा०—"ऐसी साक्षी रहने पर किसी को भी इस बारे में सन्देह नहीं हो सकता कि एक समय था जब हिन्दू—चाहे ब्राह्मण हों, चाहे अब्राह्मण हों—न केवल मांसाहारी थे: किन्तु गो मांसाहारी भी थे।" (पृष्ठ १०७)

समीक्षा—आपका लिखना कि एक समय में ब्राह्मण-अब्राह्मण सभी गो मांसाहारी थे, भ्रम है। वेदों का स्वाध्याय कीजिए आप को कहीं भी इस प्रकार का वचन न मिलेगा। मेरे दिये गए प्रमाणों से शायद आप का सन्देह निर्मूल हो जाय।

डा०—"जब मनु को लेते हैं तो उस ने भी गो हत्या के विरुद्ध कोई कानून नहीं बनाया उस ने तो विशेष अवसरों पर गो—मांसाहार अनिवार्य ठहराया है" (पृष्ठ ११५)

समीक्षा—मनुस्मृति में कहीं भी मांस भक्षण का वर्णन नहीं है जो है वह प्रक्षिप्त है। मनुजी तो स्पष्ट लिखते हैं—"नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् (मनु० ५।४८)

अर्थात् – प्राणियों की हिंसा को बिना किये मांस कहीं भी नहीं मिलता। और प्राणियों का वध स्वर्ग का देने वाला नहीं है। इस लिये मांस को त्याग दे।"

पुनः "अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥"

(मनु० ५।५१)

अर्थात्—अनुमति देने वाला, अंगों को काटने वाला, मारने वाला, क्रय और विक्रय करने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला यह सब घातक कहलाते हैं अर्थात् इन सब को पाप लगता है।

इस की साक्षी स्वयं वेदव्यास जी देते हैं—

"सर्वकर्मस्वहिंसांहि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद् विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः।
सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम् आसवं कृशरौदनम्।
धूर्त्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कथ्यते।"

(महाभारत शा० प० अ० ३४०)&

अर्थ—महात्मा मनु ने सब कर्मों में अहिंसा बतलाई है। लोग अपनी इच्छा के वशीभूत होकर वेदी पर तथा बाहर शास्त्र विरुद्ध पशुहिंसा करते

---

३६. आचार्य रामदेव जी कृत भारतवर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्ष पर्व) तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १७५।

३७. मासिक पत्र "वैदिकधर्म" वर्ष २३, अगस्त १९४९ अंक ८, पृष्ट २२६ में मेरा "आर्यों पर गो मांस भक्षण का दोषा रोपण" शीर्षक लेख। (लेखक)

& देखो पं० जे० पी० चौधरी काव्य तीर्थ, काशीकृत "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ५०-५१

हैं। शराब, मछली, मांस, खिचड़ी आदि मृतक श्राद्धार्थ। ये बात धूर्तों ने फैलाई हैं। वेद में यह नहीं कहा गया है।

आपने कोई प्रमाण नहीं दिया कि मनु जी ने किस स्थल पर गो मांसाहार अनिवार्य ठहराया है? पुनः आप ने अपनी पुस्तक पृष्ठ १८४ में लिखा है कि "हम जानते हैं कि मनु ने न तो गो मांसाहार का निषेध किया और न गो बध को ही एक अपराध ठहराया।" यहां भी आप ने कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया है?

आप की दूसरी पुस्तक "शूद्रों की खोज" है जो १९५० ई० में अमृत बुक कम्पनी कनाट सरकस नई देहली से प्रकाशित हुई है। आप ने इस पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि शूद्र क्षत्रियों के वंशज हैं। आप ने इस में भी वैदिक सिद्धांत पर कुठाराघात किया है।

आपने प्रथम ही प्रस्तावना में लिखा है— "आर्यसमाजियों का विश्वास है कि वेद अनादि और ईश्वर कृत हैं परन्तु इस पुस्तक ने यह सिद्ध किया है कि वेदों का कुछ अंश विशेषतः पुरुष सूक्त में ब्राह्मणों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए छल किया है। ये दोनों बातें आर्य समाजियों के सिद्धान्तों के बीच विस्फोटक का काम देती हैं। मुझे आर्य समाजियों का विरोध करने में रंज नहीं है। आर्य समाजियों ने हिन्दू समाज का बड़ा अनहित किया है।"..........

समीक्षा—इस पर विद्वद्वर्य पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, सिद्धान्तालङ्कार, सम्पादक "सार्वदेशिक" ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में प्रचुर प्रकाश डाला है।[३८] आप से डाक्टर महोदय ने प्रतिज्ञा भी की है कि वे अंग्रेजी पुस्तक के अगले संस्करण में उस भाग को हटवा देंगे। हिन्दी अनुवादक पं० सोहन लाल जी शास्त्री को भी डाक्टर महोदय ने कहा था कि हिन्दी संस्करण से वह अंश निकाल दिया जाय, पर प्रकाशक ने उस का उल्लंघन कर दिया जो अत्यन्त निन्दनीय बात है।

डा० जी ने 'शूद्र वर्ण की समस्या' शीर्षक में वेद के पुरुष सूक्त पर आक्षेप किया है जो आप की वेदानभिज्ञता प्रकट करता है।

आप ने पुरुष सूक्त को नहीं समझा है। देखिए, पं० विश्वनाथ 'विद्यालङ्कार' पूर्व "प्राध्यापक," विज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा वैदिक साहित्य, गुरुकुल काङ्गड़ी, इस पुरुष सूक्त पर लिखते हैं:—"आधिभौतिक दृष्टि में चारों वर्णों के पुरुषों का समुदाय—"सङ्गठित समुदाय"— "एक-पुरुष" रूप है। इस समुदाय पुरुष या राष्ट्र पुरुष के यथार्थ परिचय के लिए निम्न-लिखित मन्त्र पर विशेष विचार करना चाहिए। यथाः—

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥"

(यजु० ३१।११)

इस मन्त्र में कहा है कि ब्राह्मण मुख हैं, क्षत्रिय भुजाएं, वैश्य जंघाएं और शूद्र पैर। केवल मुख, केवल भुजायें, केवल जंघायें या केवल पैर पुरुष नहीं। अपितु मुख, भुजायें, जंघायें और पैर, "इन का समुदाय" पुरुष

३८ मासिक पत्र "सार्वदेशिक" देहली, वर्ष २३, अप्रैल १९५१ ई०, अंक २, पृष्ठ ५२-५३-५४

अवश्य है। वह समुदाय भी यदि असङ्गठित और क्रम रहित अवस्था में है तो उसे हम पुरुष नहीं कहेंगे। उस समुदाय को पुरुष तभी कहेंगे जब कि वह समुदाय एक विशेष प्रकार के क्रम में हो और एक विशेष प्रकार से सङ्गठित हो। राष्ट्र में मुख के स्थानापन्न ब्राह्मण हैं, भुजाओं के स्थानापन्न क्षत्रिय, जंघाओं के स्थानापन्न वैश्य और पैरों के स्थानापन्न शूद्र हैं। राष्ट्र में, ये चारों वर्ण, जब शरीर के मुख आदि अवयवों की तरह सुव्यवस्थित हो जाते हैं तभी इन की पुरुष संज्ञा होती है। अव्यवस्थित या छिन्न-भिन्न अवस्था में स्थित मनुष्य समुदाय को, वैदिक परिभाषा में, पुरुष शब्द से नहीं पुकार सकते। आधिभौतिक दृष्टि में 'यह सुव्यवस्थित तथा एकता के सूत्र में पिरोया हुआ ज्ञान, क्षात्र, व्यापार, व्यवसाय और परिश्रम (मजदूरी) इन का निदर्शक जनसमुदाय ही "एक पुरुष" रूप है।'".........३९

महर्षि दयानन्द जी इस मन्त्र का अर्थ करते हैं:—"(ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीत्) इस पुरुष की आज्ञा के अनुसार विद्या आदि उत्तम गुण तथा सत्यभाषण और सत्योपदेश आदि श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है। इन मुख्य गुण और कर्मों के सहित होने से वह मनुष्यों में उत्तम कहलाता है। (बाहू राजन्यः कृतः=) और ईश्वर ने बल, पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है। (ऊरू तदस्य०) इस पुरुष के उपदेश से खेती व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। (पद्भ्याᳪ शूद्रो०) जैसे पग सब से नीचे का अंग है, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।"[४०]

डा०—"आप ने पृष्ठ ४८ से ५७ तक "शूद्र क्षत्रिय हैं।" शीर्षक सातवां अध्याय में ऋ० से सुदास, शिन्यु, तुरवाशा, तृप्सु, भरत प्रभृति का नाम प्रदर्शित किया है।" परन्तु आप को ज्ञात होना चाहिए कि वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं, रूढ़ि नहीं। आपने ऋग्वेद से जिन नामों को प्रदर्शित किया है वे ऐतिहासिक नाम नहीं हैं।[४१]

डा०—"...विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के काल में वर्ण व्यवस्था नहीं थी। उन का मत है कि पुरुष सूक्त बहुत समय बाद ऋग्वेद में जोड़ दिया गया।........

सभी विद्वानों का मत है कि पुरुष सूक्त बाद का बना हुआ है। कोलब्रुक का कथन है Muir Vol 1 P. 13) कि "यह मन्त्र अर्थात् पुरुष सूक्त छन्द तथा शैली में शेष ऋग्वेद से सर्वथा भिन्न है।"..........(पृ० ५८ से ६३ तक)

समीक्षा—आप का लिखना कि पुरुष सूक्त

३९. "वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा" प्रथम संस्करण, पृ० ६०-६१।

४०. "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" सृष्टि विद्या विषयः प्रकरणम्।

४१. देखो मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी वर्ष १, अंक १२ में प्रकाशित मेरा 'वेदों में कथित ऐतिहासिक नामों का रहस्य' शीर्षक लेख। (लेखक)
तथा इसी पत्रिका में मेरा शीघ्र प्रकाशित होने वाला लेख "भारतीय इतिहास और वैदिक काल "शीर्षक लेख"।

बहुत समय बाद ऋग्वेद में जोड़ दिया गया, सर्वथा असपूर्ण है। चारों वेद (ऋक्०, यजु०, साम०, अथर्व०) ईश्वरीय ज्ञान है पुरुष सूक्त बाद का नहीं है। मैं ने अपनी पुस्तक "ऋग्वेद के १०म मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात"[४२] में सम्पूर्ण प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के इस मत का खण्डन किया है कि ऋ० का १० म मण्डल (इसी मण्डल में पुरुष सूक्त है) और बालखिल्य सूक्त बाद का बना हुआ है। मैं आप को तथा जगत् के सम्पूर्ण वेद विरोधियों को चुनौती देता हूँ कि मेरी पुस्तक का खंडन करें।

डा०—आपने अपनी पुस्तक पृष्ठ ७७ से ९६ तक "शूद्रों का पतन" शीर्षक, दसवां अध्याय में शिवाजी को शूद्र, तथा राजपूतों को हूणों की संतान बतलाने का प्रयास किया है।

समीक्षा—शिवाजी शूद्र नहीं थे, वरन् क्षत्रिय थे, इसके लिए अनेकों प्रमाण इतिहासों में भरे पड़े हैं।

राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ, महामहोपाध्याय, डा० गौरी शङ्कर हीरा चन्द ओझा डी० लिट लिखते हैं:—"मरहटा जाति दक्षिणी हिन्दुस्तान की रहने वाली है। उस के प्रसिद्ध राजा छत्रपति शिवाजी के वंश का मूल पुरुष मेवाड़ के सीसोदिया राजवंश में से ही था।"[४३]

कविराजा श्यामल दास जी लिखते हैं—"शिवा जी महाराणा अजयसिंह के वंश में थे।"[४४]

यही सिद्धान्त डा० बालकृष्ण जी एम० ए० डी० लिट, एफ आर० एस० एस० का भी है।[४५]

राजपूत हूणों की संतान नहीं वरन् शुद्ध क्षत्रिय हैं। पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा डी० लिट्[४६] श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०[४७], श्री ई० बी० कावेल (E. B. Cowell)[४८], श्री शेरिंग (Sherring M. A.)[४९], ह्वीलर (Wheeler)[५०], हण्टर

---

४२. श्री दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्दपार्क, कानपुर से प्रकाशित मूल्य ।—)

४३. ,, राजपूताने का इतिहास" जिल्द पहली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३१७

४४. ,, "वीर-विनोद" खण्डक, पृष्ठ १२८१-१२८२.

४५. ,, देखो "ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ"।

४६. ,, "राजपूताने का इतिहास" जिल्द पहली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१ से ६२ तक।

४७. "हिन्दू भारत का उत्कर्ष" पृष्ठ ३ से ५४ तक [संवत् १९८६ वि० में काशी विद्यापीठ काशी से प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

४८. "Elphinstone's History of India" edited by Prof. E. B. Cowell, 1874, Appendix, II, PP. 250.

४९. "Hindu trilbes and Castes" VoL. I, Part II, chap I. PP. 115, 117.

५०. Wheeler's "Short History of India" PP. 11 Toot note.

(Hunter)[५१], क्रूक (Crooke)[५२], पं० योगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य एम० ए०, डी० एल०[५३], प्रभृति विद्वान राजपूतों को शुद्ध क्षत्रिय मानते हैं।

प्रिवीकौन्सिल ने भी निर्णय किया है—

"There is decision of H. M's Privy Council in which it is clearly laid down that Kshatriyas still exist in India, and that the Rajputs are considered to belong to that class."[५४]

अर्थात् क्षत्रिय जो भारत में रहते हैं और राजपूत एक ही श्रेणी के हैं। अन्त में हम डाक्टर महोदय के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए यह उन्हें प्रदर्शित कर देना चाहते हैं कि वैदिक सिद्धान्त में कोई अछूत नहीं है।

आशा है आप मेरे प्रमाणों पर पूर्ण रूप से विचार कर तदनुकूल अपने ग्रन्थ में संशोधन करेंगे।

---

५१. "Hunter's India Empire PP. 131-132.

५२. Crooke's "Tribes and Castes of the N. W. P. and Oudh" Vol. IV. PP. 217.

५३. "Hindu Castes and sects," PP. 317.

५४. Tagore Law Lectures"-1870, PP. 773 (Vide P. 42).